International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
October- 2018, Volume-5, Issue-5
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

कांगड़ा की लोक संस्कृति में लोक गीतों का महत्व

Rekha Sharma
Digamber jain girls inter college, sadar meerut

कॉंगड़ा के लोकगीत विविध आयामी हैं और इनका रूप–स्वरूप अगर विश्लेषित किया जाए तो सभी पक्षों का विवरण इनमें मिल जाता है और वैसे भी ये लोकगीत जीवन के हर प्रसंग को अपने में समेटते हैं। हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार इन लोकगीतों में विश्लेषित होते हैं और यह निर्धारित है कि कौन सा गीत किस भाव को लेकर किस अवसर विशेष पर गाया जायेगा। इन गीतों में एक अनुशासन है। कांगड़ा की लोक गाथाएं बहुत विशेष हैं, ये निशब्द क्रान्तियां हैं। हैरानी होती है कि वर्षों पहले पानी की सिंचाई इत्यादि के लिए कुल्ह, बावड़ी व कुंए आदि के निर्माण हेतू बलि देने की प्रथा थी और उसके लिए चुनाव केवल स्त्री का होता था। इन सच्चाईयों पर गीत रचे गए हैं परन्तु रचनाकारों ने उन कृत्यों का औचित्य नहीं सिद्ध किया है। लोक साहित्य अंचल विशेष के लोकमानस का भाव निरूपण है। किसी स्थान की संस्कृति को समझने व जानने के लिए यह लोक साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रस्तावना–

प्रस्तुत शोध पेपर में कॉंगड़ा अंचल के कुछ विशिष्ट गीतों को संकलित किया गया है। उनका भावानुवाद, स्वरांकन व संगीतात्मक विश्लेषण किया गया है। इन गीतों में कॉंगड़ा के विविध प्रेम, विरह–वियोग सम्बन्धी गीत भी हैं और अनुष्ठान सम्बन्धी संस्कारों से जुड़े गीत भी हैं। जिनमें जन्म, सुहाग व विवाह संस्कार गीत हैं। इन गीतों में विशेष रूप से उन्हीं गीतों को शोध पेपर में सम्मिलित किया गया है जिनके केन्द्र में नारी चेतना है। यद्यपि यह बात भी सत्य है कि अधिकांश लोकगीत नारियों द्वारा गाए जाते हैं और उन अनाम गीतों की रचनाकार भी नारियां ही रही होंगी क्योंकि नारी हृदय की भावनाओं का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण इन गीतों में मिलता है। जहाँ तक जन्म व विवाह संस्कार संबंधी गीत हैं, उनमें यद्यपि नारी की चेतना व भावना मुखर हुई है। लेकिन वहां उन संस्कारों व अनुष्ठानों का विधि–विधान, विस्तार से चित्रित हुआ है। जहाँ तक दूसरे गीत हैं। जो वियोग–संयोग सम्बन्धी गीत हैं। इन गीतों में ज्यादातर प्रेम विषय के ही गीत चित्रित हुए हैं। श्रृंगार के दोनों ही पक्ष यद्यपि इनमें मुखरित हुए हैं। संयोग पक्ष भी चित्रित हुआ है। जिसमें नायिका का नख–शिख सौन्दर्य वर्णित हुआ है। ऐसा लगता है कि ये गीत पुरूषों द्वारा ही रचे गये होंगे। लेकिन बहुत सारे गीत हैं जो नारी प्रधान ही कहे जा सकते हैं। नारी की रचनाधर्मिता ही उन गीतों में परिलक्षित होती है। ऐसे गीतों में संयोग सम्बन्धी गीत बहुत हैं। वियोग की पीड़ा को अधिकांश गीतों में स्त्री के दृष्टिकोण से ही विश्लेषित किया गया है। ज्यादातर यहां स्त्री ही

विच्छोह या वियोग की पीड़ा को अनुभव कर रही है। उसका वर्णन कर रही है और उसका कारण काँगड़ा अंचल में यही है कि यहाँ की जीवन पद्धति कठिन थी। पहाड़ी क्षेत्रों में जीवन यापन के साधन नाममात्र ही थे और जो पुरूष थे उनको घर बार छोड़ कर दूर जीविकापार्जन के लिए जाना पड़ता था। मुख्यतः फौज ही जीविकापार्जन का साधन था। बहुत सारे ऐसे गीत हैं जिनमें पति या प्रिय जो फौज में चला गया है उसकी पत्नी या प्रिय उसके वियोग में कभी अस्वस्थ होने का बहाना बनाती है तो कभी परिवार की अस्वस्थता का हवाला देती है। श्रृंगार रस प्रधान इन गीतों में प्रिय–प्रियतम के बीच वियोग का चित्रण परिलक्षित हुआ है। परदेस गए पति से पत्नी यह भी आग्रह करती है कि वह जल्दी घर आ जाए क्योंकि उसकी मौज–मस्ती के चन्द ही दिन है और उसकी जवानी चार दिन की है जो बेकार जा रही है। विरह–वियोग व छिंजोटी गीतों में अधिकांश नारी हृदय की भावनाएं मुखरित हुई हैं।

इन लोकगीतों में उपमा, मानवीकरण एवं अलंकारों का भी प्रयोग देखने को मिला है। कहीं पर प्रेम जाति व धर्म के बन्धन को नकारते हुए मन की सहज उमंग व आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों में प्रकट हुई है तो कहीं वतन की खातिर अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीर–सैनिकों की पत्नियों द्वारा युद्ध के भीषण परिणामों व उनको रोकने के लिए संकल्प दोहराया गया है। इसके अतिरिक्त प्रेम में धोखा मिलने पर प्रेमिका द्वारा आत्महत्या तक कर लेने की बात भी देखने को मिली है।

जहाँ तक लोकगाथाओं का प्रश्न है ये भी स्त्री के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं। काँगड़ा जनपद में ऐसी प्रचलित लोकगाथाएं हैं। जिनमें स्त्री के साथ हुए शोषण, ज्यादती, अन्याय व अत्याचार का वर्णन देखने को मिला है। इन लोकगाथाओं में पुरूष के अहम व अहंकार स्वरूप स्त्री के प्रति हुए अत्याचारों का वर्णन है। प्रत्यक्षतः स्त्री के शोषण का चित्रण है तो अप्रत्यक्ष रूप में स्त्री विरोध व प्रतिकार का स्वर भी है। इनमें स्त्री के साथ हुए अन्याय की करूण कहानी है तो विद्रोह का झंडा उठाती नारी का दर्शन भी है। इन लोकगाथाओं में नारी शोषण के मनोनीत हथकण्डे हैं। जिन हथकण्डों और षडयन्त्रों का शिकार होकर भी ये स्त्री पात्र बहुत कुछ कह गए हैं। ये लोकगाथाएं नारी पात्र की ऐसी निःशब्द क्रान्तियां हैं जो अन्याय के विरूद्ध आने वाली पीढ़ियों को दिशा संकेत देने में समर्थ हैं।

लोकगीतों के भावनात्मक पक्ष के साथ ही संगीतात्मक पक्ष का भी विस्तृत अध्ययन व राग लक्षण के आधार पर विश्लेषण इस शोध पेपर में हुआ है। यद्यपि लोक रचनाकार विविधत रूप से प्रशिक्षित नहीं थे परन्तु उन्हें दैवीय वरदान स्वरूप संगीत की समझ व सामर्थ्य प्राप्त था। इसी अन्तर्निहित योग्यता के कारण लोकगीतों का संगीत अत्यन्त मधुर, सहज, सरल व दिल को छू लेने वाला है। यह कहना कठिन है कि लोकगीतों पर शास्त्रीय संगीत का प्रभाव है या शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत का प्रतिभास है। लेकिन यह निश्चित है कि लोक रचनाकारों ने सहज भाव से संगीत रचना की। औपचारिक शिक्षा दीक्षा लिए बगैर ही वे संगीत के मर्म को समझ सके।

लोकगीत भारतीय संस्कृति के सबल आधार है। जो समूचे क्षेत्र को आपस में जोड़ते हैं। वर्तमान समय में ऐसे गीत–रूपों की सम्पदा का सम्प्रेषण कम हो रहा है। वैसे भी इनके अध्ययन व ग्रहण करने के अवसर कम मिल रहे हैं। नई सभ्यता व अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से आने वाली पीढ़ी इन गीतों को गाने में असुविधा महसूस कर रही है। अतः दिन प्रतिदिन इन गीतों को गाने वाले गायकों में कमी होती जा रही है। जो आने वाले कल के लिए चिंता का विषय है।

अपने शोध पेपर कार्य के दौरान शोधार्थी विभिन्न जिज्ञासाओं से जूझता हुआ इन गीतों पर मंडराते संकट को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि लोकगीतों की इस सांस्कृतिक धरोहर को कैसे सुरक्षित रखा जाए व इस बहुमूल्य परंपरा को विलुप्त होने से कैसे बचाया जा सके। यह भी चिन्ता है कि आज के समय में काँगड़ा जनपद की लोक संस्कृति को भावी पीढ़ियों तक कैसे सम्प्रेषित किया जाए। क्योंकि लोकगीतों की इस समृद्ध परंपरा के संरक्षण की आवश्यकता और इनकी पारंपरिक उपयोगिता को न समझा गया तो निश्चित ही हम इस अमूल्य धरोहर को खो बैठेंगे। अतः समय रहते इन गीतों को संकलित, स्वरांकित तथा विश्लेषित करना। लोकमानस में इनके प्रति रूचि व सम्मान भाव जगाकर इस परंपरा को बनाए रखना अति आवश्यक है। लोकगीतों में सामाजिक परंपरा का निर्द्वन्द्व एवं सहज स्वभाविक चित्रण मिलता है। जो मानस के विकास क्रम में अत्यन्त सहायक हो सकता है।

काँगड़ा जनपद में अधिकांश गीत ऐसे मिले हैं जिनमें केन्द्र में नारी है। नारी का मनोविज्ञान व उसकी समस्यायें जिनमें मुखर हुई हैं। वे चाहे जन्मगीत हैं। जिसमें नारी को पुत्र की कामना करते हुए चित्रित किया गया है। उसका कारण यह नहीं है कि उसे पुत्र के प्रति विशेष चाह है, वह असल में पुरूष प्रधान समाज का प्रभाव है जिसमें उसे सिखाया गया है कि वह पुत्र की माँ होकर ज्यादा सम्मानित होगी। जब वह वंश–बेल को बढ़ायेगी तक ही उसे गौरव प्राप्त होगा। इसलिए वह पुत्र की कामना करती है।

सर्वप्रथम जन्मगीतों को विश्लेषित करने पर यह सामने आया है कि गायन संस्कारों की दृष्टि से क्रमशः सूहड़िया, सोहर, भियाइयां, रूणझुणे, काले महीने, हंसणू–खेलणू व बधाइयां इत्यादि का प्रचलन हमारे काँगड़ा जनपद में मिलता है। शहरों व कस्बों में इन गीतों का प्रचलन धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। परन्तु गांवों में ये संस्कार गीत काँगड़ा जनपद में आज भी गाये जा रहे हैं। शहरों में इन संस्कार गीतों की बहुमूल्य संपदा को आज अति आधुनिक होने के तथाकथित बोध, अपनी भाषा के प्रति हीन भाव संवेदनहीनता व डी. जे. के बढ़ते प्रचलन व प्रभाव ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। जन्म गीतों की पुनरावृत्ति हर जन्म दिवस पर की जाती है। तथा इसी प्रकार मुंडन, यज्ञोपवीत व उपनयन संस्कारों में भी इन गीतों को विधि–विधान के साथ गांवों में गाने की परंपरा को निभाया जा रहा है।

दूसरी प्रकार के गीत विवाह सम्बन्धी गीत हैं। जो विवाह संस्कार की पूर्ण पद्धति को दर्शाते हैं। शादी के कुछ दिन पूर्व लड़की के घर में गाए जाने वाने गीतों को 'सुहाग' तथा लड़के के घर 'घोड़ियां' गाने का

प्रचलन है। विवाह की हर रस्म पर स्त्रियां गीत गाती हैं। गांवों में स्त्रियां, गीतों के माध्यम से विवाह की पूर्ण रस्मों को निभाती हैं। कस्बों व शहरों में धीरे–धीरे संस्कार–अनुष्ठान कम होते जा रहे हैं। पहले गांवों में बजुर्ग महिलाएं विवाह–शादियों में अपने साथ अपनी बहुओं व सगे–सम्बन्धियों की छोटी लड़कियों को अपने साथ ले जाती थीं। साथ–साथ गायन करते हुए लड़कियां भी इन गीतों को सीख जाती थीं। परन्तु आज की युवा पीढ़ी इन गीतों को गाने में संकोच करती हैं और स्त्रियां इन संस्कार गीतों को गाती भी हैं तो उन पर व्यंग्य करती हुई नज़र आती हैं। काँगड़ा जनपद की इन समृद्ध परंपराओं पर अब आधुनिकता का प्रभाव बढ़ता दिख रहा है विवाह की परंपराएं जो पहले तीन या चार दिन तक निभाई जाती थी आज एक दो दिन तक ही सिमट कर रह गई हैं। जिससे महिलाओं द्वारा संस्कार गीत गाने के अवसर भी कम हो गए हैं।

विवाह से पूर्व गाए जाने वाले गीत 'सुहाग गीत' भी अब तक गाए जा रहे हैं। कुछ दशक पहले विवाह से लगभग हफ्तों, महीनों पहले ही ये गीत गाने आरम्भ हो जाते थे। परन्तु वर्तमान में यह प्रथा भी धीरे–धीरे कम होती जा रही है। विवाह गीतों में रीति–रिवाज़ व संस्कार गीतों के अलावा व्यंग्य गीत (गाली गीत) को गाने का प्रचलन भी था। जिनमें हास्य व व्यंग्यात्मक गीत बारात के घर में खाना खाते समय गाए जाते थे, वे भी अब नाम मात्र के ही रह गये हैं। कांगड़ा जनपद में 'रलि़' पूजन संस्कार भी अब पूर्णतया विलुप्त हो चुका है। पहले के समय में 'रलि़ पूजन' करते समय शिव–विवाह के गीत गाए जाते थे। जिन्हें स्थानीय भाषा में रलि़यां नाम देकर पुकारते थे। रलि़पूजन के अधिकांशः गीत स्त्रियां द्वारा ही गाए जाते थे। जिनमें घर–परिवार की लड़कियों को बचपन में ही पूजन करते–करते संस्कारों की शिक्षा मिल जाती थी। परन्तु वर्तमान समय में इस परंपरा पर भी ग्रहण लगने लगा है। और ये गीत विस्मृति के गर्त में खो रहे हैं।

जन्म व विवाह संस्कार गीतों की परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से ही सम्प्रेषित हुई है परन्तु कुछ समय से इनका लेखन व प्रालेखन हो रहा है। साहित्यिक रूप से कुछ विधानों व संस्थाओं ने इनके संरक्षणार्थ इन लोकगीतों को लेखन/प्रालेखन के माध्यम से संपादित व प्रकाशित भी किया है। भाषा एवं संस्कृति विभाग शिमला (हि.प्र.) के सौजन्य से जगदीश चन्द्र दत्त, मौलू राम ठाकुर, डॉ. वंशी राम शर्मा, सुदर्शन डोगरा, कांगड़ा लोक साहित्य परिषद के निदेशक एवं प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, डॉ. मनोरमा शर्मा, प्रो. चमन लाल गुप्त, सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. चन्द्ररेखा ढडवाल व स्वयं शोधार्थी ने लोकगीतों को पुस्तकों में सहेजने का प्रयास किया है। समय की यह मांग भी है कि इन गीतों के संरक्षण–संवर्धन में ऐसे प्रयास किए जाएं ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए यह धरोहर सुरक्षित रह सके। संगीतात्मक दृष्टि से इन लोकगीतों का स्वरांकन करने का पहला प्रयास श्री केशव आनन्द ने अपनी पुस्तक 'हिमाचल का लोक संगीत' में 1982 में किया था। उसके पश्चात संगीत विदूषी डॉ. मनोरमा शर्मा ने भी 'लोक मानस के सुरीले स्वर' में विविध लोकगीतों का स्वरांकन कर इस पहल को आगे बढ़ाया। इसी परंपरा में शोधार्थी ने वर्ष 2011 से 2021 तक संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली व संस्कृति मन्त्रालय भारत सरकार की तीन परियोजनाओं 'कांगड़ा जनपदीय जन्मगीतों, छिंझोटी गीतों का सांगीतिक

दस्तावेज़ीकरण एवं लोक गायन ढोलरू द्वारा लोक साहित्य परिषद नेरटी, काँगड़ा की तीन परियोजनाओं में विविध लोकगीतों का स्वरांकन व प्रालेखन कर इस क्रम को आगे बढ़ाने का कार्य किया है। अपनी दो प्रकाशित पुस्तकों लोकभाव स्वरांजली भाग एक व दो में लगभग 150 लोकगीतों को संकलित व स्वरांकित कर इसी शीर्षक के अन्तर्गत लोकगीतों की अन्य विधाओं (सुहाग गीत, विवाह गीत,संयोग–वियोग गीत, लोक गाथा गीत व विविध गीत) को भी स्वरांकित व संपादित करने का दृढ़ संकल्प लिया है।

लोकगीत अंचल विशेष व समुदाय विशेष के जीवन का दर्पण होते हैं। बल्कि ये गीत रीति–विधान भी बन जाते हैं। यदि हम इन गीतों से दूर हो रहे हैं तो हम अपनी विरासत से और अपनी जड़ों से विलग रहे हैं। इस शोध की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी क्योंकि यह समय की आवश्यकता है।

"यद्यपि लोकगीतों के सृजन में पुरूष व स्त्री दोनों का योगदान है परन्तु जहाँ तक संस्कार गीतों का प्रश्न है ये गीत स्त्रियों द्वारा ही रचे व सम्प्रेषित हुए हैं। आज तो व्यक्ति व संस्था के स्तर पर भी इन गीतों का संरक्षण–संवर्धन सही रूप में हो रहा है।

काँगड़ा की लोकगाथाओं में करूणा, प्रेम, प्रतिस्पर्धा, द्वेष और ईर्श्या आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनके केन्द्र में नारी है। काँगड़ा की कुछ प्रचलित लोक गाथाओं में पुरूष के अहंकार स्वरूप स्त्री के प्रति अत्याचारों का वर्णन देखने को मिला है। जिसमें प्रत्यक्ष रूप से स्त्री का शोषण व अप्रत्यक्ष रूप से विरोध व प्रतिकार के स्वर परिलक्षित हुए हैं।

काँगड़ा की लोकगाथाएं निःशब्द क्रांतिया हैं। हैरानी होती है कि वर्षों पहले पानी आदि की सिंचाई इत्यादि के लिए कुल्ह, बावड़ी व कुंए आदि के निर्माण हेतू बलि देने की प्रथा थी और उसके लिए चुनाव केवल स्त्री का होता था। इन सच्चाईयों पर गीत रचे गए हैं। परन्तु रचनाकारों ने उन कृत्यों का औचित्य नहीं सिद्ध किया बल्कि बहुत ही सांकेतिक ढंग से उसका विरोध उनमें विद्यमान है। त्रासदी चित्रित हुई है। चाहे कुल्ह हो, धोवण हो या कण्डी की गाथा हो, जिनमें स्त्रियों के साथ ज्यादती हुई या शोषण हुआ था। उनकी मृत्यु हो गई, उनकी बलि दे दी गई या वे आत्मघात के लिए विवश हो गई थी लेकिन उसके बाद भी वे इन लोकगाथाओं के माध्यम से जीवन्त है और आज भी जब वे गाथाएं गाई जाती हैं तो उन प्रताड़ित नायिकाओं ने जो एक तरह से अनाम होकर या नहीं होकर भी जो लड़ाई उन्होंने छेड़ी, जो संघर्ष छेड़ा वह शब्द–शब्द इन लोकगाथाओं में अभिव्यक्त हुआ है।

काँगड़ा जनपद की अधिकांशः लोकगाथाओं को लोक कलाकारों ने गीतों के रूप में गाया है। वर्तमान समय में भी इन गाथाओं को गीत रूपों में गा रहे हैं। लेकिन आज इनको गाने वाले पारंपरिक लोकगायक धीरे–धीरे कम हो रहे हैं। उनका गायन भी उनके साथ ही लुप्त प्रायः हो रहा है। लोक गाथाओं को घर–घर जाकर गाने वाले (चैत्र मास में) ढोलरू, मुसादा गायक, ऐंचली गायक, वारों व कारकों के गायक,

देव–स्तुतियों के गायक अब अपनी परम्परा से विलग रहे हैं। किसी समय उन्हें व उनके गायन को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। भौतिकवाद, पूंजीवाद व बाज़ारवाद ने मनुश्य की संवेदनाओं को मृत प्रायः कर दिया है। वह उसी चीज व व्यक्ति की कद्र करता है जो उसके लिए उपयोगी हो। आधुनिक होने के दम्भ ने भी आज के मानव को पारंपरिक विरासत से अलग कर दिया है। ऐसे में ये गायक भी रोज़ी–रोटी के बेहतर अवसर तलाश रहे हैं। ये भी सफेदपोश कार्य करना चाहते हैं। परन्तु अब भी ये गाथाएं गायकों द्वारा गाई जा रही हैं। कारण जो भी रहा हो लोकगाथाएं आज भी संरक्षित व प्रचारित हो रही हैं।

विरह–वियोग व छिंझोटी गीतों में नारी चित्रण सशक्त ढंग से हुआ है। नारी की उत्कंठ कामना प्रेम के लिए है और उसे अगर प्रेम नहीं मिलता है तो उसके विषाद, त्रासदी व पीड़ा का चित्रण भी उतना ही सशक्त है। यह वियोग इन गीतों में पति से बिछड़ने के कारण है। पति परदेस में जीविका उपार्जन के लिए फौज की नौकरी कर रहा है उसको छुटटी नहीं मिलती और पत्नी की जवानी व्यर्थ जा रही है। पति से बिछुड़कर रहने वाली स्त्रियों की दिनचर्या इन गीतों में व्यक्त हुई है। इनके कथ्य को एक सामान्य प्रेम कहानी के रूप में लोकमानस द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये गीत जब गाये जाते हैं तो आधुनिक युवा पीढ़ी उन्हें मनोरंजनार्थ ग्रहण कर लेती हैं लेकिन उसमें अर्न्तनिहित जो बहुत सारे तथ्य हैं, वे उदघाटित नहीं होते।

विरह व वियोग गीतों का प्रचलन आधुनिक समय में भी कम नहीं हुआ है विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों, प्रतियोगिताओं व कार्यक्रमों में इन्हें गाया जाता है। आधुनिक तकनीक द्वारा भी इन गीतों की सी.डी., डी. वी. डी., यू–ट्यूब व इंटरनेट के माध्यम से प्रचार व प्रसार किया जा रहा है। श्रोताओं व सहृदयी पाठकों तक इनकी पहुँच बढ़ रही है। स्थान विशेष की संस्कृति के नाम पर इन गीतों का बाज़ारीकरण बाकायदा हो रहा है। परन्तु एक निष्कर्ष यह भी है कि ये गीत हमारे अनुष्ठान/आयोजन के पाहुन बन रहे हैं। संस्कृति का परचम भी लहरा रहे हैं परन्तु स्वभाव व जीवन पद्धति का अंग नहीं हो रहे हैं। इन गीतों में संवेदना व भावना के स्तर पर जो मानवीय मूल्य पराकाष्ठा पर हैं। जो आज के समय में दुर्लभ है। पर्यावरण इन गीतों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो हमारे चिन्तन व मनन का विषय बन कर रह गया है। वैसे भी प्रेम की जो भावनाएं इन प्रेम गीतों व गाथाओं में वर्णित है वे अब वायवी प्रतीत होती है। संयोग पक्ष की झलक तो मिल सकती है परन्तु वियोग व प्रेम की वह मीरां वाली पीर कहीं नहीं है। इस दृष्टि से ये गीत हमारे लिए मानक प्रस्तुत करते हैं।

छिंजोटी अर्थात छिन्ज से सम्बन्ध लम्बी भाख (स्वर) वाले विविध भावना प्रधान गीतों में दुःख/सुख का चित्रण मिलता है। छिन्ज अर्थात कुश्ती प्रतियोगिता एक समय में एक धार्मिक कारज़ (कार्य) की तरह सम्पन्न होता था। आज भी छिन्ज–मेलों का प्रचलन है। लेकिन लोगों की वह अपूर्व श्रद्धा अब देखने को नहीं मिलती। गीत गायन की परंपरा का भी समापन होता जा रहा है। छिन्जों के नगाड़ों की ताल पर नाचते व कान पर हाथ, धर लम्बी तान लगाते गायक अब दुर्लभ हैं। वास्तव में गीत–संगीत की तकनीकी

क्रान्ति ने धुनों को इतना सक्षम व आकर्षक बना दिया है कि पारंपरिक वाद्य व सामान्य गायक अपने गायन से आम जनमानस को प्रभावित नहीं कर पाते। परन्तु संयोग व वियोग पक्ष को बखानते लोकगीतों की मार्मिकता व संवेदना अक्षुण है। जो सहृदयी श्रोताओं को आज भी सम्मोहित करती है। इनसे प्रेम सम्बन्धी शाश्वत मूल्य सृजित होते हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर भी इस लोक साहित्य के संरक्षण पर बहुत बल दिया जाना जरूरी है। इसके लिए एक मनुश्य को एक सहृदयी श्रोता और पाठक बनना जरूरी है। आज के समय में विशेष रूप से जो युवा पीढ़ी है अध्ययन–मनन से बिल्कुल दूर होती जा रही है। वे कोई भी ऐसी चीज़ नहीं पढ़ना–सुनना चाहते जिसके लिए उन्हें अपने मस्तिष्क पर जोर डालकर भावनाओं व विचारों को समझने की कोशिश करनी पड़े। वे बहुत सरल और सुगम सी चीज़े जो उन्हें इंटरनेट पर बड़ी आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं, अपना लेते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपनी आधुनिक पीढ़ी को विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में जाकर अपनी लोक संस्कृति की परंपराओं से जोड़े। अपने रीति–रिवाजों, लोक संस्कारों का पूर्ण परिचय से उनको अवगत करवायें। वे अगर इन चीज़ों से जुड़ेंगे तो स्वयं उनकी रूचि इन गीतों की ओर बढ़ेगी और ये गीत भी अपने आप उनके हृदय में जाकर बस जायेंगे। इसके लिए यह भी जरूरी है कि प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्व–विद्यालयों तक बहुत सी ऐसी प्रतियोगिताएं आयोजित हों जो लोक संस्कृति से जुड़ी हो, जो लोकगीतों पर आधारित हों।

हमने देखा है कि वर्तमान समय में प्रेम, विरह, आनन्द, संयोग–वियोग व नृत्य सम्बन्धी गीतों की प्रतियोगिताएं तो इन संस्थाओं में आयोजित हो जाती हैं लेकिन संस्कार गीतों का पक्ष लगभग छूट रहा है। उसके संरक्षण में किसी भी स्तर पर कोई भी पहल नहीं हो रही है। इन संस्थाओं में जन्म, विवाह संस्कार सम्बन्धी विषयों पर भी ऐसी प्रतियोगिताएं होनी चाहिये। अन्य प्रकार के गीतों का दोहराव अक्सर देखा गया है लेकिन संस्कार गीतों के संरक्षणार्थ ऐसे प्रयास कभी भी नहीं हुए। इन विषयों को भी संगीत व साहित्य के पठन–पाठन में जोड़ा जाना अति आवश्यक है। लोक संस्कृति को पठन–पाठन में जोड़ा तो जरूर जा रहा है लेकिन जो लोग इस लोक संस्कृति को पठन–पाठन में जोड़ रहे हैं या इससे सम्बन्धित कार्य कर रहे हैं वे अपना स्वार्थ साधते हुए अपनी लिखी हुई पुस्तकों को ही विद्यालयों में स्वीकृत कर रहे हैं या लगा रहे हैं। ज़रूरत है आज लोकगीतों की प्रकाशित व संकलित महत्वपूर्ण पुस्तकों को नई पीढ़ी तक पहुँचाने की। उनके अध्ययन–मनन की। ताकि युवा पीढ़ी उन गीतों के भाव–विश्लेषण को समझे, उनके अर्थ ग्रहण करें और संगीतात्मक दृष्टि से उनके स्वरांकन को समझे व पुनः उन लोकगीतों की मूल धुनों को पकड़े और आत्मसात करे।

इसके बाद दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व समाज का आता है। बहुत सारी स्वायत, निजी व सरकारी संस्थाएं भी इससे सम्बन्धित कार्य कर रही है। जो साहित्यकार व लोक संस्कृति से जुड़े विद्वान लेखन/प्रालेखन कर रहे हैं। वे भी इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। हमारी जिला व राज्य स्तर की संस्थाएं जिनमें जिला भाषा

अधिकारी, नेहरू युवा केन्द्र, जिला सेवाएं एवं खेलकूद विभाग, राज्य भाषा एवं संस्कृति विभाग भी विभिन्न प्रकार के सेमीनार, संगोष्ठियां, प्रतियोगिताएं व कार्यशालाएं समय–समय पर आयोजित कर हमारी लोक व सांस्कृतिक विरासत को सहेजने का सराहनीय कार्य कर रही हैं। लेकिन इन कार्यक्रमों में एक बात देखने को मिली है कि इन कार्यक्रमों में दार्शनिक व सैद्धान्तिक पक्ष ज्यादा उभर कर आया है, या देखने को मिला है। परन्तु व्यवहारिक पक्ष को कम महत्व दिया जाता है।

लोक संस्कृति की समृद्ध परंपरा के संवर्धन हेतू आने वाली पीढ़ी में लोकगीतों विशेषकर संस्कार व प्रेम गीतों के प्रति रूचि पैदा करनी होगी। ताकि वे इनके अर्थ खुद खोजें, इनकी मूल धुनों को खुद समझे व तैयार करें। ज़रूरत है उनको पहले इन गीतों से जोड़ने की। यदि ये गीत उनके चित में बस जायेंगे तो वे इनके अन्दर छिपे मूल्यों को भी समझने की कोशिश करेंगे और इनके भावों को भी समझेंगे। यद्यपि विभिन्न संस्थाओं व विभागों द्वारा ऐसे प्रयास निरंतर किए जा रहे हैं। परन्तु आवश्यकता है इनको और बड़े स्तर पर आयोजित करने की। पिछले कई वर्षों से आकाशवाणी व दूरदर्शन भी निरंतर लोक संस्कृति के संरक्षाणार्थ सराहनीय कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में सामुदायिक रेडियो केन्द्र भी लोक संस्कृति विशेषकर लोकगीतों के संरक्षण व प्रचार–प्रसार में अति प्रशंसनीय प्रयास कर रहे हैं।

एक बात और जो देखने को मिली है कि संस्कार गीतों की रचयिता अगर नारियां हैं तो उनके सम्प्रेषण में भी बड़ा योगदान उन नारियों का ही है। और उनकी हिस्सेदारी भी सबसे ज्यादा है। अगर हम चाहते हैं कि यह धरोहर आगे बढ़ती ही जाए तो जिन साहित्यकारों, विधानों व संगीतकारों ने इन लोकगीतों के संरक्षणार्थ लेखन, संकलन, प्रालेखन, स्वरांकन व कथ्य विश्लेषण किया है। उनके द्वारा लिखित पुस्तकें व सामग्री महिलाओं तक पहुंचानी चाहिये। जनपद में जितने महिला मण्डल, पंचायतें, नगर परिषद व गांव है उनमें रहने वाली महिलाओं को इन लोकगीतों से अवगत करवाया जाये। वे गाती जरूर है परन्तु बहुत प्रक्षिप्त अंश इनमें जुड़ गए हैं। आधुनिकीकरण के मोह में कुछ महिलाओं ने माँ–बावा की जगह मम्मी–पापा लगा लिया है। तो यह भी ज़रूरी है कि हमने संरक्षण अपनी लोकभाषा का करना है। हम अगर बाहर से ओढ़ी हुई मानसिकता को, भाषा को संरक्षित, संवर्धित व प्रदर्शित कर रहे हैं तो इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हम अपनी मातृभाषा से विच्छिन हो रहे हैं। इसलिए बहुत जरूरी है कि लोकगीतों के मौलिक स्वरूप व वास्तविक रूप को आम जनमानस तक पहुंचाए।

हमारे लोक समाज का भी यह दायित्व बनता है कि हमारे लोकगायक व लोकगाथा गायक जो भी घर–घर जाकर गायन करते हैं उनको सुनें व उचित मान–सम्मान दें और उनको इसके लिए भी प्रेरित करें कि वे अपनी आने वाली पीढ़ी को भी अपनी इस गायन परंपरा से निरन्तर जोड़ कर रखें व इस धरोहर को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करें।

सरकारी व गैर सरकारी तथा स्वायत संस्थाओं के माध्यम से विविध लोकगायक वर्गों का पता लगाया

जाए। लोकसंगीत से जुड़े लोगों व जातियों का विश्लेषण करके उनको उनकी पारंपरिक गायकी के लिए आर्थिक सहायता भी दी जाए व उनकी आगामी पीढ़ियों को गाना सिखाने के लिए प्रोत्साहित करें। साथ में समाचार पत्रों के सम्पादकों का भी यह दायित्व बनता है कि लोक संस्कृति से सम्बन्धित विभिन्न लेखों, आलेखों व रचनाओं को छापें तथा लोक संस्कृति के विद्वानों, साहित्यकारों, संगीतकारों, लोकगायकों, गाथा गायकों व लोक संगीत से जुड़े विभिन्न कलाकारों को इन समाचार पत्रों में यथा स्थान दें। ताकि वर्तमान पीढ़ी भी इसमें रूचि ले इस सांस्कृतिक विरासत को अपनाकर आत्म चिन्तन व आत्मसात करे।

पिछले कुछ वर्षों से मेरी दृष्टि में लोक संस्कृति के क्षेत्र में बहुत कार्य हुआ है। एक समय था जब लोक सगीत के सम्प्रेषण की केवल मौखिक परंपरा का ही निर्वहन होता था। फिर कुछ समय पश्चात इनका लेखन–प्रालेखन होने लगा तो उस दृष्टि से देखा जाए तो जिन साहित्यकारों व विद्वानों ने यह काम किया उनके पास जो शोध सामग्री थी वह कम थी परन्तु वर्तमान में व आगे आने वाले शोधार्थियों ने गीतों के साथ इनका रूप–स्वरूप व एकत्रित गीतों की सीडी, डीवीडी भी साथ लगाकर इन लोकगीतों को और प्रभावी बना दिया है।

निष्कर्ष–

निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी लोकगीतों को साहित्यिक व संगीतात्मक दृष्टि से आगे बढ़ाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। लोकगीत प्रायः युग की प्रिय व अप्रिय घटनाओं से जन्मते हैं। इन गीतों में युग की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का समावेश होता है। इन लोकगीतों को एकत्रित करके फिर इन्हें स्वर लिपिबद्ध किया जाए तो ये हमारे साहित्य को काफी समृद्ध व नये आयाम दे सकते हैं। यद्यपि लोकगीत मौखिक परंपरा में जीवित रहते हैं। इनका सृजन कब और कैसे हुआ इसका उत्तर देना सहज नहीं है। गांवों की लोकनारियों मुख्यतः वृद्धा स्त्रियों से इन गीतों को गवाकर, रिकार्ड कर संकलित व स्वर लिपिबद्ध कर इस धरोहर को लुप्त होने से बचाया जा सकता है। इन लोकगीतों को संग्रहित किया गया है। इनके साहित्यिक पक्षों पर विवेचना हुई है, परन्तु इनका स्वरांकन व प्रालेखन हो, ऐसे प्रयास कम हुए हैं। लोक संगीत को आधुनिक समय में स्वर लिपियांकन के माध्यम से ही बचाया जा सकता है। लोकगीतों का संगीतात्मक अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि इस लोक साहित्य का संगीतात्मक शोध विश्लेषण की पृष्ठभूमि को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- व्यथित' डॉ. गौतम शर्मा, हिमाचल प्रदेश लोक संस्कृति और साहित्य निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए–5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली–110016
- शर्मा डॉ. मीनाक्षी, हिमाचली कृष्ण काव्य, काँगड़ा : शीला प्रकाशन, राज मन्दिर नेरटी, 1990

- शर्मा डॉ. मनोरमा, लोक मानस के सुरीले स्वर हिमाचली लोकगीत संगीत विभाग, हि.प्र.वि.वि. शिमला, 1993
- राठौर श्री मोहन, हि.प्र. का लोक संगीत, हिमाचली कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला।
- आनन्द केशव, हिमाचल का लोक संगीत, संगीत नाटक अकादमी, रवीन्द्र भवन, फिरोज़शाह रोड़, प्रथम संस्करण,1982, नई दिल्ली–110001
- व्यथित' डॉ. गौतम शर्मा : कांगड़ा–चम्बा (हि.प्र.) जनपदीय विरसा लोकगाथा,
- सरस्वती डॉ. स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, महार्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली–2
- मिट्टू हरिकृष्ण, 'नीरज' रामदयाल, शर्मा सत्येन्द्र, हिमाचल के लोक गीत, प्रथम संस्करण, मार्च 1998
- शुक्ल राम चन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास (काशी : नगरी प्रचारिणी सभा, सं. 2035 वि.)
- रंधावा महेन्द्र सिंह, काँगड़ा कला देश और गीत प्रथम संस्करण दिल्ली साहित्य एकादमी, 1970
- सत्येन्द्र, डॉ. लोक साहित्य विज्ञान आगरा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड सन्ज़, 1961
- ठाकुर, डॉ. सूरत, हिमाचल प्रदेश का जनजातीय लोक संगीत, शिवांक प्रकाशन, 2019